download full book from www.madhyasth.org

17. ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय

दर्शन (न्याय, धर्म, सत्य), दृष्टा (मानव जीवन), दृश्य (सह-अस्तित्व),

ध्यान (जागृति), ध्याता (मानव), ध्येय (भ्रम मुक्ति, जीवन मूल्य, मानव लक्ष्य सहज प्रमाण),

कारण (ज्ञानावस्था), कर्ता (मानव), कार्य (अखण्डता, सार्वभौमता में भागीदारी),

साध्य (दृष्टा पद, जागृति), साधक (मानव), साधन (शरीर व जीवन)

ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय के मुद्दे पर अध्यात्मवादी, अधिदैवी वादी, अधिभौतिक वादी नजरिये से सुदूर विगत में ही सोचना मानव परम्परा में ख्यात रहा अथवा विदित रहा। इन तीनों विधाओं का एकत्रित नामकरण आदर्शवाद रहा। इन तीनों में समानता का बिन्दु रहस्य ही है। भौतिकता से अधिक वाला भी एक रहस्य। देवता अपने में एक रहस्य, अध्यात्म अपने आप में रहस्य है। आदर्शवाद का मूल आधार स्थली, गम्यस्थली दोनों रहस्य है। रहस्य के आधार और गम्यस्थली होने के आधार पर ही मतभेदों का होना आवश्यक रहा। इसी के साथ-साथ अनेक विधि से प्रयोग, अभ्यास का भी प्रयास हुआ। जितने भी प्रकार से इन तीनों विधाओं में प्रयास हुए अभ्यास, साधन, योग, ध्यान से लेकर पूजा, पाठ, प्रार्थना तक। इन सभी कृत्यों के फलन के रुप में जो आश्वासन मिला, वह मोक्ष और स्वर्ग, मोक्ष भी एक रहस्य, स्वर्ग भी एक रहस्य रहा और यही गम्यस्थली कहलाता रहा।

आधार भी रहस्य होना इस प्रकार से रहा है। एक रहस्य से ही, रहस्य में ही शून्य, ब्रह्म से ये सभी सृष्टि, स्थिति, लय हुई, अथवा भौतिक क्रियाकलाप से परे किसी वस्तु से सृष्टि, स्थिति लय हुई। इस प्रकार शुरुआत रहस्य से और अन्त भी रहस्य से हुआ। अन्त, शुभद रहस्य स्वर्ग और मोक्ष से। शुभद इसीलिए कि स्वर्ग और मोक्ष को आनन्द है, रहस्य इसीलिए कि रहस्य में इसका अन्त होने से। इन्हीं तीनों प्रकार की संयुक्त आशय रुपी आदर्शवाद के अनुसार दृश्य, दृष्टा, दर्शन के बारे में ब्रह्मवादियों के अनुसार ब्रह्म ही दृष्टा, ब्रह्म ही अपने संकल्प के अनुसार दृश्य और ब्रह्म ही दर्शन करने वाली दृष्टि है। वैसे ही

अधिदैवी वाले भी कहते हैं, जो दस्तावेजों के अनुसार पढ़ने को मिलता है, उसके अनुसार शक्ति विद्या, शिव विद्या, और विष्णु विद्या तीन प्रतिपादित हैं। शक्ति में ही सम्पूर्ण दृश्य, सृष्टि स्थिति लय है। वैसे ही तीनों में ये देवाधीन है। सभी दृश्य इसीलिए है कि दृश्य रुप में देवताओं का संकल्प है, देवता ही दृष्टा हैं, दर्शन करने वाला भी देवता है। इसी प्रकार अधिभौतिक वाद के अनुसार भी भौतिकता से अधिक ताकतवर कोई रहस्यमयी दृष्टा, दृश्य, दर्शन होने की बात कही गयी है। इसी क्रम में ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय के बारे में भी बात बताई गई है। ब्रह्म ही अथवा देवता, स्वयं में ही ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय के रुप में, ध्यान, ध्याता, ध्येय ये सब है। कार्य, कारण, कर्ता के रुप में भी ईश्वर अथवा देवता को मानने के लिए तैयार है। ये पहले की आवाज इस रुप में ही रही है।

भौतिक वादी विचार के अनुसार रचना भेद से चेतना भेद निष्पन्न होता है, इनका प्रमाण देखने को नहीं मिलता। भौतिक वस्तु ही चेतना का स्रोत माना गया। इस क्रम में पत्थर, मिट्टी को परीक्षण करने से कुछ दिखता नहीं है।

सहअस्तित्व वादी नजरिये से मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रुप होने का अध्ययन सम्पन्न करते हुए, जीवन चैतन्य पद प्रतिष्ठा होने की स्थिति समझ में आता है। चैतन्य प्रकृति रुपी जीवन जागृतिक्रम से जागृति पूर्वक, मानव परम्परा में जागृति को प्रमाणित करना होता है। मानव परम्परा में शरीर और जीवन का सान्निध्य आवश्यक है, अथवा सहअस्तित्व आवश्यक है। जीवन में होने वाली दस क्रियाओं के आधार पर जैसा अनुभव, प्रमाण, अनुभव का बोध और संकल्प, संकल्प का साक्षात्कार एवं चित्रण, चित्रण का तुलन और विश्लेषण, विश्लेषण का आस्वादन और चयन, ये दस क्रियायें जीवन में सम्पादित होती हैं। यही दस क्रियायें जीवन जागृति के अनन्तर प्रमाणित होते हैं। शरीर को जीवन मानते तक, जीवन क्रियाओं में से साढ़े चार क्रियायें ही सम्पन्न हो पाते हैं। शेष साढ़े पाँच क्रियायें प्रमाणित नहीं हो पाते। इसी संकट वश मानव प्रताड़ित होता है। स्वयं में अन्तर्विरोध वश, जीवन शक्तियाँ प्रमाणित नहीं हो पाने के संकट वश प्रताड़ित है। इसी तरह शरीर को जीवन समझने का भ्रम समस्याओं का कारण बनना और ब्राह्य प्रताड़ना वश मानव व्याकुल एवं संकट ग्रस्त रहता है। इसका प्रभाव द्रोह, शोषण, युद्ध सदा-सदा से मानव कुल के सिर पर ही नाच रहा है। अथवा मानव इसे अपरिहार्य मान चुका है। इससे घटिया तस्वीर मानव

कुल का क्या हो सकता है यह सोचने का बिन्दु है। जबकि मानव इसे ही शान मानता रहा है।

सहअस्तित्व वादी विधि से जीवन और शरीर का अध्ययन और सहअस्तित्व का अध्ययन, सहअस्तित्व में जीवन अविभाज्य रहने का अध्ययन, सहअस्तित्व में संपूर्ण भौतिक, रासायनिक क्रियायें सम्पन्न होने का सम्पूर्ण अध्ययन करतलगत हो गया। रासायनिक, भौतिक वस्तुओं, सम्पूर्ण प्रकार की वनस्पति संसार, जीव संसार और मानव शरीर रचनायें सम्पन्न होने की कार्य कलाप का अध्ययन सुलभ हो जाता है। मानव शरीर में मेधस तंत्र सर्वोच्च समृद्ध रचना होने के आधार पर जीवन की कर्मस्वतंत्रता, कल्पनाशीलता प्रकाशित होते हुए, सोच विचार, कार्यकलाप, फल परिणाम के आधार पर, और सोच विचार होते हुए अब कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता की तृप्ति बिन्दु की ओर, शोध अनुसंधान करने के लिए प्रस्तुत हुए। क्योंकि द्रोह-विद्रोह, शोषण-युद्ध से हम छुटकारा पाना चाहते ही हैं। ये संभवतः सर्वाधिक भले आदमियों में स्वीकृत है ही। इसके लिए सह-अस्तित्व वादी अध्ययन की आवश्यकता रही।

सह-अस्तित्व वादी सोच के अनुसार ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय को ठीक-ठीक अध्ययन किया जा सकता है। ज्ञाता के रुप में जीवन को, ज्ञान के रुप में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान; जीवन ज्ञान; मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को पहचाना गया। जागृति पूर्वक मानवाकाँक्षा, जीवनकाँक्षा को सार्थक बनाना ज्ञेय का तात्पर्य है, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था पूर्वक मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य को प्रमाणित करना है, यही ज्ञेय के सार्थक होने का प्रमाण है।

इसी प्रकार दृष्टा, दृश्य, दर्शन की भी सार्थक व्याख्या हो पाती है। दृष्टा पद में जीवन, दृश्य पद में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व, दर्शन के अर्थ में अस्तित्व दर्शन के रूप में सार्थक व्याख्या होना हो जाता है।

ध्यान, ध्याता, ध्येय भी इसी क्रम में स्पष्ट होता है। ध्येय जागृति के रूप में, ध्यान समझदारी से सम्पन्न होने; समझदारी को प्रमाणित करने के क्रम के रूप में, ध्याता जीवन के रूप में पहचानने की व्यवस्था है।

कर्त्ता, कार्य, कारण भी स्पष्ट है। कर्त्ता पद में जीवन, कार्य पद में मानव; देव मानव; दिव्य मानव पद-प्रतिष्ठा, कारण के रूप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व नित्य प्रतिष्ठा

है।

साध्य, साधन, साधक के रूप में जो सोचा जाता था, सहअस्तित्व वादी नजरिये से साधक को पहचानने का तरीका बहुत आसान, प्रयोजन से जुड़ा हुआ होना पाया जाता है। सहअस्तित्ववादी नजरिये से साधक मानव के रूप में पहचानने में आता है। साध्य के रूप में जीवन जागृति सुलभ हो पाता है। मानव स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार के रूप में जागृति ही पहचानने में आता है। ऐसे स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार, समझदारी के रूप में और ऐसी समझदारी ज्ञान, विज्ञान, विवेक रूप में पुनः स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार वैभवित होना पाया जाता है। यही जागृति का प्रमाण है। इस प्रकार साध्य कितना सार्थक है अर्थात् जागृति रूपी साध्य कितना सार्थक है, हर व्यक्ति सोच सकता है। साधन के रूप में शोध, अनुसंधान के लिए कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता, परम्परा रूप में प्रमाण, यही साधन है। प्रमाण सम्पन्न परम्परा अर्थात् प्रमाण और प्रमाणिकता के धारक वाहक के रूप में मानव परम्परा जब अपने को प्रमाणित कर पाती है, उसी समझ में सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज का प्रमाण बना ही रहता है। सार्वभौम व्यवस्था में प्रमाणित होने में भागीदारी करना ही प्रमाण सर्वसुलभ रहता है। सार्वभौम व्यवस्था के अंगभूत रूप में ही मानवीय शिक्षा संस्कार वैभवित होना पाया जाता है। मानव परम्परा में सार्वभौमता का वैभव ज्ञान, शिक्षा संस्कार पूर्वक ही सार्थक होना पाया जाता है। यही प्रमाण परंपरा का तात्पर्य है। ऐसे भी सामान्य सर्वेक्षण से पता लगता है, सार्वभौम अर्थात् सर्वमानव में स्वीकृति। सहअस्तित्ववादी विधि से जितने भी विधा में अभ्यास, अध्ययन, कार्य, व्यवहार व्यवस्था में प्रमाण की कतार बना है, उसे हृदयंगम करना, अपने में जाँच पाना, सार्थकता-निरर्थकता को निश्चय कर पाना, हर नर-नारी के लिए अति सुगम होना पाया गया।

मानव का साध्य वस्तु जागृति है। जिसका स्वत्व स्वतंत्रता एवं अधिकार का स्वरूप ज्ञान, विज्ञान, विवेक जिसका प्रमाण कार्य व्यवहार पूर्वक अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप है जो एक दूसरे से कड़ी के रूप में जुड़ा हुआ है। इसमें किसी कड़ी को विभाजित नहीं कर सकते। परम्परा के रूप में जो साध्य वस्तु है, मानवाकाँक्षा, जीवनाकाँक्षा उसे सहअस्तित्व वादी ज्ञान, विवेक, विज्ञान के बिना प्रमाणित करना सम्भव नहीं हो सकता। सहअस्तित्व वादी विधि से ही प्रमाणित हो सकता है। सहअस्तित्व कोई रहस्य या संघर्ष

नहीं है। सहज रूप में, सर्वमानव को समझ में आने वाला और सर्वमानव से आशित वस्तु है। क्योंकि हर मानव किसी की परस्परता में ही जीना और सुख पाना चाहता है। इस विधि से सहअस्तित्व की महिमा समझ में आता है।

साथ में जीने के क्रम में, सर्वप्रथम मानव ही सामने दिखाई पड़ता है। ऐसे मानव किसी न किसी सम्बन्ध में ही स्वीकृत रहता है। सर्वप्रथम मानव, माँ के रूप में और तुरंत बाद पिता के रूप में, इसके अनन्तर भाई-बहन, मित्र, गुरु, आचार्य, बुजुर्ग उन्हीं के सदृश्य और अड़ोस-पड़ोस में और भी समान संबंध परंपरा में है हीं। जीने के क्रम में, संबंध के अलावा दूसरा कोई चीज स्पष्ट नहीं हो पाता है। संबंधों के आधार पर ही परस्परता, प्रयोजनों के अर्थ में पहचान, निर्वाह होना पाया जाता है। इस विधि से पहचानने के बिना निर्वाह, निर्वाह के बिना पहचानना संभव ही नहीं है। इसमें यह पता लगता है कि प्रयोजन हमारी वांछित उपलब्धि है। प्रयोजनों के लिए संबंध और निर्वाह करना एक अवश्यंभावी स्थिति है, इसी को हम दायित्व, कर्त्तव्य नाम दिया। सम्बन्धों के साथ दायित्व और कर्त्तव्य अपने आप से स्वयं स्फूर्त होना सहज है। कर्त्तव्य का तात्पर्य क्या, कैसा करना, इसका सुनिश्चियन होना कर्त्तव्य है। क्या पाना है, कैसे पाना है, इसका सुनिश्चियन और उसमें प्रवृत्ति होना दायित्व कहलाता है। हर संबंधों में पाने का तथ्य सुनिश्चित होना और पाने के लिए कैसा, क्या करना है, यह सुनिश्चित करना, ये एक दूसरे से जुड़ी हुई कड़ी है। ये स्वयं स्फूर्त विधि से, सर्वाधिक संबंधों में निर्वाह करना बनता है। जागृति के अनन्तर ही ऐसा चरितार्थ होना स्पष्ट होता है। भ्रमित अवस्था में संबंधों का प्रयोजन, लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता है। भ्रमित परम्परा में सर्वाधिक रूप में संवेदनशील प्रवृत्तियों के आधार पर, सुविधा संग्रह के आधार पर और संघर्ष के आधार पर संबंधों को पहचानना होता है। सुदूर विगत से इन्हीं नजरियों को झेला हुआ मानव परम्परा मनः स्वस्थता के पक्ष में वीरान निकल गया। जबकि सहअस्तित्व वादी विधि से मनःस्वस्थता की संभावना, सर्वमानव के लिए समीचीन, सुलभ होना पाया जाता है। इसी तारतम्य में हम सभी संबंधों को सार्थकता के अर्थ में, प्रयोजनों के अर्थ में और संज्ञानीयता पूर्ण प्रयोजन के अर्थ में पहचान पाते हैं। इसका स्पष्ट रूप सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के रूप में, इसका स्पष्ट रूप मानवाकाँक्षा; जीवनाकाँक्षा प्रमाणों के अर्थ में स्वीकार सहित और मूल्यांकन सहित कार्य व्यवहार और व्यवस्था और आचरणों को परिवर्तन कर लेना ही सहअस्तित्व

वादी ज्ञान, विज्ञान और विवेक का फलन होना पाया जाता है।

मानवाकांक्षा - समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व सहज प्रमाण।

जीवनाकांक्षा - सुख, शांति, संतोष आनंद के रूप में गण्य है।